International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 10, Issue 11, Nov 2023
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

भारत में प्रचलित प्रमुख चिकित्सा पद्धतियाँ

श्री पूरण मल मीना सह आचार्य इतिहास
राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
लालसोट (दौसा)

शोध सारांश :– यह एक सर्वविदित तथ्य है कि पारम्परिक चिकित्सा पद्धति ने हमेशा वैश्विक स्वास्थ्य देखभाल की जरूरतों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में भी वो इस प्रकार का स्वरूप रखे हुए है और भविष्य में भी प्रमुख भूमिका निभाएंगी। ये चिकित्सा पद्धतियाँ, जो मूल रूप से भारतीय मानी जाती है अथवा जो बाहर से भारत में आई हैं और भारतीय संस्कृति में शामिल हो गई हैं, उन्हें भारतीय चिकित्सा पद्धति के रूप में जाना जाता है। भारत को इस श्रेणी में छह मान्यता प्राप्त चिकित्सा पद्धतियों का अनूठा गौरव प्राप्त है। वे हैं – आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, ऐलोपैथी और होम्योपैथी।

संकेताक्षर :– आयुर्वेद, काय चिकित्सा, नाड़ी, मटेरिया मेडिका, रेजीमेंटल, योग, शल्य चिकित्सा, पित्त, विष चिकित्सा व औषद्रव्य।

प्रस्तावना :– आयुर्वेद सहित भारत की अधिकांश पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों की जड़ें लोक–चिकित्सा में हैं। हालाँकि आयुर्वेद अन्य प्रणालियों से अलग है, जो परिभाषित वैचारिक रूपरेखा है। यह स्वास्थ्य और रोगों के प्रति एक एकीकृत दृष्टिकोण का समर्थन करने वाली प्रथम चिकित्सा प्रणालियों में से एक थी। आयुर्वेद की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसने अपनी वैचारिक रूपरेखा विकसित की और सर्वप्रथम दार्शनिक ढांचा प्रदान किया जो बेहतर परिणामों के साथ चिकित्सकीय अभ्यास को निर्धारित करता था। इसका दार्शनिक आधार आंशिक रूप से 'सांख्य' से लिया गया है। इसने अपने विकास से काफी पहले ही चिकित्सा की तर्कसंगत प्रणाली में विकसित होने और धार्मिक प्रभाव से अपने को अलग होने में सक्षम बना लिया। इसने इंद्रियों और मानव तर्क के साक्ष्य के मूल्य पर बहुत जोर दिया।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धती :– आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है जीवन का विज्ञान। यह माना जाता है कि आयुर्वेद के मौलिक और व्यावहारिक सिद्धांत 1500 ईसा पूर्व के आस–पास व्यवस्थित और प्रतिपादित हुए। अथर्ववेद, ज्ञान के चार महान निकायों में से अंतिम–वेद के रूप में जाना जाता है, जो भारतीय सभ्यता की रीढ़ है, इसमें विभिन्न रोगों के उपचार के लिए योग से संबंधित 114 पद्य शामिल हैं। सदियों से एकत्रित और पोषित ज्ञान से दो प्रमुख परम्पराएं और आठ विशेषज्ञताएं विकसित हुईं। एक चिकित्सकों की परम्परा थी जिसे 'धन्वंतरि संप्रदाय' (सम्प्रदाय का अर्थ परंपरा) कहा जाता है और शल्य चिकित्सकों की दूसरी परम्परा को साहित्य में 'आत्रेय संप्रदाय' के रूप में संदर्भित किया जाता है। इन विद्यालयों में उनसे संबंधित

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

प्रतिनिधि थे – औषधि परम्परा के लिए चरकसंहिता और शल्य चिकित्सा के लिए सुश्रुत संहिता। पूर्व में चिकित्सा और संबंधित विषयों के विभिन्न पहलुओं से संबंधित कई अध्याय हैं। अथर्ववेद में पौधे, पशु और खनिज मूल की लगभग छह सौ औषधियों का उल्लेख किया गया है।

भारत में, आयुर्वेद को एक संपूर्ण चिकित्सा प्रणाली के रूप में माना जाता है जो मानव जाति के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, दाशनिक, नैतिक और आध्यात्मिक कल्याण को ध्यान में रखता है। यह ब्रह्मांड के साथ सद्भाव और प्रकृति और विज्ञान के सामंजस्य में रहने पर बहुत महत्व देता है। यह सार्वभौमिक और समग्र दृष्टिकोण लिये एक अद्वितीय और विशिष्ट चिकित्सा प्रणाली है। यह प्रणाली सकारात्मक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए उचित जीवन शैली के रखरखाव के महत्व पर जोर देती है।

इसका मूल आधार मौलिक सिद्धांत है जिसके अनुसार ब्रह्मांड (स्थूल जगत) में जो कुछ भी मौजूद है वह शरीर (सूक्ष्म जगत) में मौजूद होना चाहिए। यह अवधारणा दी गई है कि ब्रह्मांड, पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश (अंतरिक्ष) नामक पांच मूल तत्वों से बना है। मानव शरीर उनसे प्राप्त होता है जिसमें ये मूल तत्व एक साथ जुड़कर वात, पित्त और कफ नामक 'त्रिदोष' के रूप में जाने जाते हैं। ये शरीर में बुनियादी मनोजैविक कार्यों को नियंत्रित और अनियंत्रित करते हैं। इन तीन देहद्रवों के अतिरिक्त, सात मूल ऊतक (सप्त धातु) भी होते हैं – रस, रक्त, ममसा, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा शरीर के तीन अपशिष्ट उत्पाद जैसे मल, मूत्र और पसीना। शरीर की स्वस्थ स्थिति तीनों दोषों के बीच इष्टतम संतुलन की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। जब भी किसी कारण से यह संतुलन बिगड़ता है तो रोग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। शरीर के घटकों की वृद्धि और विकास भोजन के रूप में प्रदान किए जाने वाले पोषण पर निर्भर करता है। भोजन की संकल्पना ऊपर वर्णित मूल पांच तत्वों से बनी है। इसलिए इसे जैव–अग्नि (अग्नि) की क्रिया के बाद शरीर के विभिन्न घटकों को फिर से भरने या पोषण करने के लिए मूल स्रोत सामग्री माना जाता है। शरीर के ऊतकों को संरचनात्मक संस्थाओं के रूप में माना जाता है और देहद्रव को शारीरिक संस्थाओं के रूप में माना जाता है, जो पाच मूल तत्वों के विभिन्न संयोजनों और क्रम परिवर्तन से प्राप्त होता है।

आयुर्वेद में उपचार विभिन्न प्रकार के होते हैं – शोधन चिकित्सा (शुद्धि उपचार), शमन चिकित्सा (उपशामक उपचार), पथ्य व्यवस्था (उचित आहार और गतिविधि का नुस्खा), निदान परिवर्जन (बीमारी या बीमारी के बढ़ने के कारणों और स्थितियों से बचाव), सत्वजय (मनोचिकित्सा) और रसायन (मनोरोग प्रतिरोध, प्रतिरोधक क्षमता और कायाकल्प दवाओं सहित)।

आयुर्वेद को अष्टांग आयुर्वेद के नाम से जाना जाता है – अर्थात जो आठ भागों से बना हो। आयुर्वेद के आठ प्रमुख विभाग इस प्रकार हैं –

1. काय चिकित्सा (आंतरिक चिकित्सा), 2. कौमार भृत्य (बाल रोग), 3. भूतविद्या (मनोचिकित्सा), 4. शालाक्य (नाक, कान, गला, नेत्र विज्ञान), 5. शल्य (सर्जरी), 6. अगदा तंत्र (विष विज्ञान), 7. रसायन (जराचिकित्सा) और 8. वजीकरण (कामोत्तेजक)।

इस प्रकार चरक एवं जीवक ने आयुर्वेद में विभिन्न रोगों, उनके लक्षण और विकृति के कारण बताते हुए शरीर के विभिन्न अंगों का उल्लेख भी किया है। चरक व जीवक के इन आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का अन्य चिकित्सा प्रणाली से तुलना करने लिए दूसरी प्रणालियों का पृथक से विवेचन करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

सिद्ध चिकित्सा पद्धति

सिद्ध चिकित्सा प्रणाली का आयुर्वेद से घनिष्ठ संबंध है फिर भी यह अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। इस प्रणाली को तमिल सभ्यता के साथ निकटता से जोड़ा जाने लगा है। 'सिद्ध' शब्द 'सिद्धि' से बना है – जिसका अर्थ है उपलब्धि। सिद्धर वे पुरुष थे जिन्होंने चिकित्सा, योग या तप (ध्यान) के क्षेत्र में सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया।

यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व दक्षिण भारत में विशेष रूप से कावेरी, वैगई, तमीरापर्णी आदि नदियों के तट पर एक सुविकसित सभ्यता पनपी थी। इस सभ्यता में प्रचलित चिकित्सा पद्धति प्रतीत होती है। समय बीतने के साथ–साथ इसने दवाओं की अन्य धाराओं के साथ परस्पर क्रिया की और उन्हें पूरक और समृद्ध किया और बदले में समृद्ध हो गए। औषधि की सिद्ध प्रणाली का मटेरियामेडिका काफी हद तक धातु और खनिज मूल की दवाओं पर निर्भर करता है, जबकि पहले के समय में आयुर्वेद मुख्य रूप से वनस्पति मूल की दवाओं पर निर्भर था।

परंपरा के अनुसार सिद्ध चिकित्सा, योग और दर्शन के विकास में अट्ठारह सिद्धों का योगदान माना जाता था। हालाँकि, उनके द्वारा रचित साहित्य संपूर्णता म उपलब्ध नहीं है। प्राचीन भारतीय आचार्यों (गुरुओं) की सुविख्यात स्वयंभू प्रकृ ति के अनुसार महान योग्यता के कई साहित्यिक कार्यों के लेखकत्व का निर्धारण किया जाना बाकी है। अपने काम के लेखक होने का श्रेय अपने शिक्षक, संरक्षक, यहाँ तक कि उस समय के एक महान विद्वान को देने की भी परंपरा थी।

सिद्ध चिकित्सा की दार्शनिक नींव

सिद्ध अवधारणाओं के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा दो प्रमुख सत्ताएं हैं, जिनका ब्रह्मांड की प्रकृति को आकार देने में बहुत प्रभाव है। उन्हें सिद्ध प्रणाली में शिव और शक्ति कहा जाता है। पदार्थ ऊर्जा के बिना मौज्द नहीं हो सकता है और इसके विपरीत। इस प्रकार दोनों अविभाज्य हैं। ब्रह्मांड पांच मूल तत्वों से बना है। इस चिकित्सा प्रणाली में पांच मूल तत्वों और तीन दोषों की अवधारणा उनसे संबंधित आयुर्वेदिक अवधारणा के समान ही है। हालाँकि व्याख्या में कुछ अंतर हैं। नैदानिक उपायों के पीछे की अवधारणाएं भी केवल कुछ पहलुओं में भिन्न होने वाली महान समानताएं दिखाती हैं। सिद्ध प्रणाली में निदान प्रसिद्ध 'अष्टस्थान परीक्षा' द्वारा किया जाता है (आठ स्थलों की जांच) जिसमें नाड़ी (नाड़ी), कान (आंखें), स्वरा (आवाज), स्परिसम (स्पर्श), वर्ण (रंग), ना (जीभ), माला (मल) और नीर (मूत्र) की जांच शामिल है। आयुर्वेद के शास्त्रीय साहित्य की तुलना में शास्त्रीय सिद्ध साहित्य में इन परीक्षण प्रक्रियाओं को अधिक विस्तार से प्रदान किया गया है।

सिद्ध चिकित्सा में उपचार के सिद्धांत

चरक व जीवक के आयुर्वेद सिद्धान्तों की तरह, सिद्ध प्रणाली भी उपचार प्रक्रियाओं के संबंध में अष्टांग अवधारणा का पालन करती है। हालाँकि मुख्य जोर तीन शाखाओं पर है – बाला वहतम (बाल चिकित्सा), नंजुनूल (विष विज्ञान) और नयना विधि (नेत्र विज्ञान)। अन्य शाखाएं आयुर्वेद में देखी गई सीमा तक विकसित नहीं हुई हैं। शल्य प्रक्रियाएं, जिन्हें आयुर्वेदिक परम्परा में बहुत विस्तार से समझाया गया है, सिद्ध परम्परा में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। दोनों प्रणालियों में चिकित्सीय को मोटे तौर पर समाना और शोधन में वर्गीकृत किया जा सकता है। उत्तरार्द्ध में पंचकर्म चिकित्सा के तहत वर्गीकृत प्रसिद्ध प्रक्रियाएं

शामिल हैं। सिद्ध प्रणाली में यह चिकित्सा इतनी अच्छी तरह से विकसित नहीं है, केवल वमन चिकित्सा पर सिद्ध चिकित्सकों का ध्यान गया है।

मटेरिया मेडिका

दवा की संरचना से संबंधित अवधारणा, रसपंचक की अवधारणा (दवा के गुणों की व्याख्या करन वाली अवधारणा) चिकित्सा की दोनों प्रणालियों में लगभग समान है। सिद्ध मटेरिया मेडिका की प्रमुख विशेषताओं में से एक वनस्पति मूल की दवाओं की तुलना में खनिज और धातु आधारित तैयारियों का अधिक उपयोग है।

सिद्ध प्रणाली में खनिज और धातु आधारित दवाओं को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है –

1. उप्पु (लवानाम) – दवाएं जो पानी में घुल जाती हैं और आग में डालने पर वाष्प बन जाती हैं। 2. पाषाणं – जल में अघुलनशील लेकिन आग में डालने पर वाष्प छोड़ने वाली औषधियां 3. उपरसम – रासायनिक रूप से पाषाणम के समान लेकिन विभिन्न क्रियाएं करती हैं। 4. रत्न और उपरत्न – जिनमें कीमती और अर्ध–कीमती पत्थरों पर आधारित दवाएं शामिल हैं 5. लोहाम – धातु और मिश्र धातु जो पानी में नहीं घुलते हैं लेकिन आग में डालने पर पिघल जाते हैं और ठंडा होने पर जम जाते हैं। 6. रसम – औषधियाँ जो नरम, उदात्त होती हैं जब आग में डाल दी जाती हैं तो छोटे क्रिस्टल या अक्रिस्टल चूर्ण में बदल जाती हैं। 7. गंधकम – गंधक पानी में अघुलनशील होता है और आग में डालने पर जल जाता है। उपरोक्त मूल औषधियों से यौगिक निर्मितियाँ प्राप्त होती हैं। जानवरों के साम्राज्य से पैंतीस उत्पादों को मटेरिया मेडिका में शामिल किया गया है। यह आयुर्वेद में उपयोग की जाने वाली तैयारियों के समान है। पादप–आधारित तैयारियों की संख्या का उपयोग औषधि की सिद्ध प्रणाली में भी किया जाता है, वे प्रोफ़ाइल में आयुर्वेद में उल्लिखित लोगों के समान हैं।

यूनानी चिकित्सा पद्धति

यूनानी चिकित्सा की उत्पत्ति ग्रीस में हुई है। ऐसा माना जाता है कि इसे महान चिकित्सक और दार्शनिक – हिप्पोक्रेट्स (460–377 ई.पू.) द्वारा स्थापित किया गया था। गैलेन (130–201 ई.) ने इसके आगे के विकास में योगदान दिया। अरस्तू (384–322 ई.पू.) ने एनाटॉमी और फिजियोलॉजी की नींव रखी। डायोस्कोराइड्स – पहली शताब्दी ई. के प्रसिद्ध चिकित्सक ने फार्माकोलॉजी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, विशेष रूप से पौधों की उत्पत्ति की दवाओं के लिए। विकास का अगला चरण मिस्र और फारस (वर्तमान ईरान) में हुआ। मिस्रवासियों के पास अच्छी तरह से विकसित फार्मेसी थी; वे विभिन्न खुराक रूपों जैसे तेल, पाउडर, मरहम और शराब आदि की तैयारी में माहिर थे।

कई अरब देशों के इस्लामी शासको के संरक्षण में अरब के विद्वानों और चिकित्सकों ने इस प्रणाली के विकास में बड़ी भूमिका निभाई है। कई विषयों जैसे रसायन विज्ञान, फार्मास्युटिकल प्रक्रियाओं जैसे आसवन, उच्च बनाने की क्रिया, निस्तापन और किण्वन उनके द्वारा विकसित और परिष्कृत किए गए थे। कई जाने–पहचाने नाम हैं। जाबिर बिन हय्यान (717–813 ई.) अपने समय के एक शाही चिकित्सक ने रासायनिक पहलुओं पर काम किया है; इब्ने रबन तबरी (810–895 ई.) पुस्तक के लेखक हैं – फ़िरदौस उल हिकमत और आधिकारिक सूत्र की अवधारणा पेश की। अबू बकर ज़राकारिया रज़ी (865–925 ई.) ने एक पुस्तक लिखी है जिसे 'अल्हावी फ़िट तिब्ब' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने इम्यूनोलॉजी के क्षेत्र में काम किया है। बेशक यूनानी से संबंधित सभी मामलों में बू अली सिना (एविसेना 980–1037 ई.) का नाम हमेशा लिया जाता है। वे विश्व स्तर के विख्यात विद्वान और दार्शनिक थे। यूनानी चिकित्सा के वर्तमान स्वरूप के विकास में उनकी महती

भूमिका थी। उनकी पुस्तक अलक़ानून या (द कैनन ऑफ़ मेडिसिन) चिकित्सा पर एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसित पुस्तक रही, जिसे सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोपीय देशों में पढ़ाया जाता था। स्पेन में अरब मूल के कई चिकित्सकों ने भी प्रणाली के विकास में योगदान दिया है। कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं – अबुल कासिम ज़ोहरावी (अबुलकसस 946–1036 ई.) वे शल्य चिकित्सा पर प्रसिद्ध पुस्तक 'अल तसरीफ़' के लेखक हैं।

1350 ई. के आसपास भारत में यूनानी चिकित्सा शुरू करने में अरबों का महत्वपूर्ण योगदान था। पहले ज्ञात हकीम (चिकित्सक) जिया मोहम्मद मसूद रशीद ज़ंगी थे। प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कुछ प्रसिद्ध चिकित्सक हैं – अकबर मोहम्मद अकबर अरज़ानी (लगभग 1721 ई.) पुस्तकों के लेखक – क़राबदीन कादरी और टिब्बे अकबर; हकीम एम. शरीफ खान (1725–1807) – एक प्रसिद्ध चिकित्सक जो अपनी पुस्तक इलाज उल अमराज के लिए प्रसिद्ध हैं। हकीम अजमल खान (1864–1927) भारत में शताब्दी यूनानी चिकित्सक। वे एक चिकित्सक होने के साथ–साथ एक बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे, वे एक वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और एक स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने दिल्ली के करोल बाग में यूनानी और आयुर्वेदिक कॉलेज की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्होंने राउवोल्फिया सर्पेंटिना पर कई अध्ययनों का पर्यवेक्षण किया है। एक अन्य महान योगदानकर्ता हकीम कबीरुद्दीन (1894–1976) हैं, उन्होंने अरबी की 88 यूनानी पुस्तकों का अनुवाद किया है और फ़ारसी भाषाएँ उर्दू में यूनानी चिकित्सा की पहली संस्था 1872 में अविभाजित भारत में लाहौर में ओरिएंटल कॉलेज के रूप में स्थापित की गई थी। इसके बाद कई संस्थान अस्तित्व में आए।

यूनानी चिकित्सा के मूल सिद्धान्त

यूनानी के मूल सिद्धांतों के अनुसार शरीर चार मूल तत्वों अर्थात पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि से बना है, जिनके अलग–अलग स्वभाव हैं जैसे ठंडा, गर्म, गीला, सूखा। वे नई संस्थाओं को मिश्रण और अंतःक्रिया के माध्यम से बढ़ा देते हैं। शरीर सरल और जटिल अंगों से बना है। ये अपना पोषण चार द्रव्यों रक्त, कफ, काला पित्त और पीला पित्त से प्राप्त करते हैं। इन द्रव्यों का भी अपना विशिष्ट स्वभाव होता है। शरीर की स्वस्थ अवस्था में देहद्रवों में संतुलन होता है और शरीर अपने स्वभाव और वातावरण के अनुसार सामान्य रूप से कार्य करता है। रोग तब होता है जब द्रव्यों का संतुलन बिगड़ जाता है।

इस प्रणाली में भी स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए प्रमुख महत्व दिया जाता है। यह संकल्पना की गई है कि स्वस्थ अवस्था के रखरखाव के लिए छह अनिवार्यताओं की आवश्यकता होती है। वे हैं – वायु, खाना और पीना, शारीरिक गति और प्रतिक्रिया, मानसिक गति और आराम।

मानव शरीर को सात घटकों से बना माना जाता है, जिसका सीधा असर व्यक्ति के स्वास्थ्य की स्थिति पर पड़ता है। वे हैं – तत्व (अर्कान), स्वभाव (मिजाज), देहद्रव (अकलत), अंग (आज़ा), विद्या (कुवा), आत्मा (अरवाह)। इन घटकों का चिकित्सक द्वारा निदान के लिए और उपचार की सीमा तय करने के लिए भी ध्यान में रखा जाता है।

निदान – यूनानी में रोग निदान में नाड़ी की जांच का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अलावा पेशाब और मल की जांच भी की जाती है। नाड़ी की विभिन्न विशेषताओं जैसे – आकार, शक्ति, गति, स्थिरता, पूर्णता, दर, तापमान, स्थिरता, नियमितता और लय को रिकॉर्ड करने के लिए जांच की जाती है। मूत्र की विभिन्न विशेषताओं जैसे गंध, मात्रा, परिपक्व मूत्र और विभिन्न आयु समूहों में मूत्र की जांच की जाती है। रंग, गाढ़ेपन, झाग और निकलने म लगने वाले समय आदि के लिए मल की जांच की जाती है।

चिकित्सा पद्धति

रोग की स्थिति का इलाज चार प्रकार के उपचारों – रेजीमेंटल थेरेपी, डाइटोथेरेपी, फार्माकोथेरेपी और सर्जरी द्वारा किया जाता है। रेजिमेंटल थेरेपी में मुख्य रूप से दवा रहित थेरेपी जैसे व्यायाम, मालिश, तुर्की स्नान, डूश आदि शामिल हैं। डायटोथेरेपी रोगी विशिष्ट आहार आहार की सिफारिश पर आधारित है। फार्माकोथेरेपी में रोग के कारण को ठीक करने के लिए दवाओं का प्रशासन शामिल है। नियोजित दवाएं मुख्य रूप से पौधों से प्राप्त होती हैं कुछ जानवरों से प्राप्त होती हैं और कुछ खनिज मूल की होती हैं। उपचार के लिए एकल और मिश्रित दोनों प्रकार की तैयारी का उपयोग किया जाता है।

यदि विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र में प्रचलित स्थिति का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय पारंपरिक प्रणालियों में उपयोग की जाने वाली दवाओं के बढ़ते उपयोग की ओर एक प्रत्यक्ष रूचि है, विशेष रूप से वे जो न केवल भारत में बल्कि विभिन्न भागों में हर्बल उत्पादों पर आधारित हैं।

उपरोक्त प्रस्तुति को उपरोक्त प्रणालियों के संक्षिप्त परिचय के रूप में हो माना जा सकता है। प्रकाशित साहित्य में बहुत सारा साहित्य और जानकारी उपलब्ध है, जिसके उद्धरण इस लेखन को वृहद बना देंगे इसलिए संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति

बुकरात के समय (लगभग 400 ई.पू.) से लेकर अब तक के चिकित्सकों ने यह महसूस किया है कि कुछ पदार्थ स्वस्थ लोगों में रोग के वही लक्षण उत्पन्न कर सकते हैं, जिस रोग से दूसरे लोग पीड़ित हैं। जर्मन चिकित्सक, डा. क्रिश्चियन फ्रेडरिच सैमुअल हनीमैन ने इस तथ्य की वैज्ञानिक रूप से जांच की और होम्योपैथी के आधारभूत सिद्धांतों को कूटबद्ध किया।

भारत में होम्योपैथी को यूरोपीय मिशनरियां 1810 ई. के आसपास लाईं और 1948 में संविधान सभा द्वारा और तदुपरांत संसद द्वारा पारित एक संकल्प द्वारा इसे आधिकारिक मान्यता प्राप्त हुई।

होम्योपैथी के पहले सिद्धांत 'सिमिलिया सिमिलिबस क्यूरेंटर' के अनुसार जो औषधि किसी स्वस्थ व्यक्ति में जो लक्षण उत्पन्न करती है, वहीं औषधि उस रोग विशेष से वास्तविक रूप से पीड़ित व्यक्ति का उपचार करने में भी समर्थ है। इसके दूसरे सिद्धांत 'सिंगल मेडिसिन' में कहा गया है कि किसी रोगी विशेष का उपचार किए जाने के दौरान उसे एक समय में एक ही दवा दी जानी चाहिए। इसका तीसरा सिद्धांत 'मिनिमम डोज' या न्यूनतम दवा की मात्रा में बताया गया है कि किसी औषध की न्यूनतम खुराक, जिससे किसी प्रतिकूल प्रभाव के बिना उपचारात्मक क्रिया शुरू हो जाती है, दी जानी चाहिए।

होम्योपैथी इस अवधारणा पर आधारित है कि किसी रोग की उत्पत्ति मुख्यतः बाह्य कारकों, यथा बैक्टीरिया और विषाणुओं आदि की क्रिया के अलावा किसी व्यक्ति के किसी रोग विशेष से शीघ्र प्रभावित अथवा पीड़ित होने संबंधी अभिवृत्ति पर निर्भर करती है।

होम्योपैथी की उपचारात्मक क्षमता के अपन कुछ विशिष्ट क्षेत्र हैं और यह एलर्जी, स्वःरोग प्रतिरोधक विकार और विषाणु संक्रमणों के उपचार के लिए विशेष रूप से लाभदायक है। शल्य चिकित्सा, स्त्री रोग, प्रसूति संबंधी अनेकों समस्याओं और बाल रोग, नेत्र, नाक, कान, दांत, त्वचा, यौन अंगों आदि को प्रभावित करने वाले रोगों का होम्योपैथी उपचार के द्वारा कामयाब इलाज किया जाता है। होम्योपैथी में व्यवहारगत विकारों, तन्तु तंत्रिका संबंधी समस्याओं और चयापचयी व्याधियों का प्रभावी समाधान उपलब्ध है। उपचारात्मक पहलुओं के अलावा होम्योपैथिक औषधियों का उपयोग निवारक और संवर्धनात्मक स्वास्थ्य परिचर्या में भी किया जाता है। हाल ही में पशुओं के उपचार, कृषि सम्बन्धी समस्याओं और दंत रोगों आदि में होम्योपैथिक

औषधियों के उपयोग के प्रति लोगों की दिलचस्पी बढ़ी है। होम्योपैथिक चिकित्सा शिक्षा का विकास स्नातकोत्तर शिक्षण में विशेषज्ञताओं, अर्थात मटेरिया मेडिका, ऑर्गेनन ऑफ मेडिसिन, रिपर्टरी, चिकित्सा अभ्यास, बाल रोग, फार्मेसी और मनोरोग में हुआ है।

होम्योपैथी ऐसी औषधियां खिलाकर रोगों के उपचार का एक तरीका है, जो प्रयोगों के आधार पर स्वस्थ मानवों पर इसी प्रकार के लक्षण पैदा करने की शक्ति सिद्ध कर चुकी हैं। होम्योपैथी में उपचार, जो समग्र प्रकृति का होता है, रोगी के एक विशिष्ट पर्यावरण वातरोग विकारों, जीर्ण यकृत विकारों, बिनाइन प्रोस्ट्रेट हाइपरट्रोफी, खूनी बवासीर, गैर–सोरियाटिक प्रकृति के चर्म विकारों के विभिन्न प्रकारों सहित पेप्टिक अल्सर के मामले में अत्यधिक प्रभावशाली उपचार प्रदान करने में है।

योग चिकित्सा

योग मूलतः आध्यात्मिक है और यह स्वस्थ जीवन जीने की कला और विज्ञान है, जिसमें शरीर और मस्तिष्क के बीच सामंजस्य योग स्थापित करने पर बल दिया जाता है। 'योग' शब्द के दो अर्थ हैं। पहले अर्थ का मूल 'यूजिर' अर्थात 'एकात्म' है और दूसरा अर्थ 'युजा' मूल से लिया गया है, जिसका मतलब है 'समाधि' – मस्तिष्क की चरम स्थिति और नितांत ज्ञान। सुविख्यात संस्कृत व्याकरणविद 'पाणिनि' के अनुसार योग शब्द क ये दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण अर्थ हैं।

योग का अभ्यास स्वस्थ जीवन शैली के एक भाग के रूप में किया जा रहा है और यह हमारी आध्यात्मिक धरोहर का एक हिस्सा बन चुका है। योग आज के युग में पूरे विश्व में लोकप्रिय है, क्योंकि इसके आध्यात्मिक मूल्य हैं, इसकी उपचार क्षमता है, रोगों के निवारण, स्वास्थ्य संवर्द्धन तथा जीवनशैली से जुड़े विकारों के उपचार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। अनेक नैदानिक अध्ययनों से स्पष्ट हो गया है कि जीवनशैली से जुड़े रोगों अथवा मनोविकारों के उपचार में योग बहुत सक्षम है। इस पद्धति की एक विशेषता यह है कि इसका स्वास्थ्य परिचर्या की अन्य किसी भी पद्धति के साथ विरोध नहीं है।

योग का लक्ष्य सभी प्रकार के दुःखों और इनके मूल कारण अज्ञानता को जड़ से समाप्त करना है और इसे मोक्ष अथवा मुक्ति कहा जाता है। योग के मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य, प्रसन्नता, सामन्जस्य, आध्यात्मिक खोज, व्यक्तित्व का विकास आदि है। योग इतना प्राचीन है जितनी हमारी सभ्यता। योग के अस्तित्व का प्रथम पुरातत्वीय साक्ष्य सिंधु घाटी से खोद कर निकाले गए पाषाण मुहरों में पाया जाता है।

योग सिंधु घाटी सभ्यता (3000 ई.पू.) की एक विशेषता थी। वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, ग्रंथों, पुराणों, आगमों, तंत्रों आदि में योगिक साहित्य पाया गया है। मध्ययुगीन, आधुनिक और समकालीन साहित्य में भी योग के समृद्ध स्रोत उपलब्ध हैं। वैदिक और उपनिषदीय साहित्य में संदर्भित साहित्य तीन महत्वपूर्ण कृतियों में परिलक्षित है, जिन्हें प्रस्थानत्रेयी कहा जाता हैः (क) प्रमुख उपनिषद (उपदेशप्रस्थान), (ख) बादरायण के वेदांत सूत्र (न्यायप्रस्थान), (ग) भगवत गीता (साधनाप्रस्थान)। इन कृतियों में योग के विभिन्न रूपों जैसे ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदि का उल्लेख है।

तथापि, शास्त्रीय योग, जो कि शाद दर्शनों में से एक है, का 200 ई.पू. में रहने वाले महान संत पतंजलि द्वारा समर्थन किया गया है। पतंजलि ने योग सूत्र नामक एक पुस्तक की रचना की, जिसमें 195 सूत्र हैं। पतंजलि ने अष्टांग योग, जो प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रचलित है, का समर्थन किया। ये योग हैं – यम (आत्म–नियंत्रण), नियम (पालन), आसन (मनो–शाशारीरिक मुद्रा), प्राणायाम (श्वास नियंत्रण), प्रत्याहार (इंद्रीय नियंत्रण), धारणा (ध्यान केंद्रण), ध्यान (चिंतन), समाधि (चिंतन अथवा मुक्ति की स्थिति)।

योग उपचार में निम्नलिखित सिद्धांतों और संकल्पनाओं को अपनाया जाता है – उपनिषदों में उल्लिखित पंचकोष (पांच आवरण) का सिद्धांत; पतंजलि योग सूत्र में उल्लिखित चित्त–वृत्तिनिरोध, क्रियायोग और अष्टांग का सिद्धांत; पतंजलि योग सूत्र और हठ योग में उल्लिखित विभिन्न प्रकार की शुद्धियों का सिद्धांत; हठ योग और कुंडलिनी योग में उल्लिखित वायु और प्राण (नाड़ी शुद्धि) के बंद मार्गों, पद्यों और चक्रों, कुंभक प्राणायाम, मुद्राओं और दृष्टियों को खोलने का सिद्धांत।

'योग' शब्द के दो अर्थ हैं। पहले अर्थ का मूल 'यूजिर' अर्थात 'एकात्म' है और दूसरा अर्थ 'युजा' मूल से लिया गया है, जिसका मतलब है 'समाधि' – मस्तिष्क की चरम स्थिति और नितांत ज्ञान। सुविख्यात संस्कृत व्याकरणविद 'पाणिनि' के अनुसार योग शब्द के ये दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण अर्थ हैं। योग का अभ्यास स्वस्थ जीवन शैली के एक भाग के रूप में किया जा रहा है और यह हमारी आध्यात्मिक धरोहर का एक हिस्सा बन चुका है। योग आज के युग में प्रे विश्व में लोकप्रिय है, क्योंकि इसके आध्यात्मिक मूल्य हैं, इसकी उपचार क्षमता है, रोगों के निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन तथा जीवनशैली से जुड़े विकारों के उपचार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। अनेक नैदानिक अध्ययनों से स्पष्ट हो गया है कि जीवनशैली से जुड़े रोगा अथवा मनोविकारों के उपचार में योग बहुत सक्षम है। इस पद्धति की एक विशेषता यह है कि इसका स्वास्थ्य परिचर्या की अन्य किसी भी पद्धति के साथ विरोध नहीं है।

योग का लक्ष्य सभी प्रकार के दुःखों और इनके मूल कारण अज्ञानता को जड़ से समाप्त करना है और इसे मोक्ष अथवा मुक्ति कहा जाता है। योग के मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य, प्रसन्नता, सामन्जस्य, आध्यात्मिक खोज, व्यक्तित्व का विकास आदि है। पतंजलि योग सूत्र, मंत्र योग और हठ योग की भांति मस्तिष्क से कार्य करना। भगवत गीता में उल्लिखित कर्म, ज्ञान, भक्ति के अनुसार कार्य करना। तंत्र याग के कतिपय पहलु भी योग के विभिन्न अभ्यासों के साथ समाहित हो जाते हैं।

षटकर्म – योग में ये छह शुद्धिकरण तकनीकें हैं, जिनका इस्तेमाल शरीर के आंतरिक अवयवों और प्रणालियों को साफ करने के लिए किया जाता है। इसे विषरहित करने की प्रक्रिया कहा जाता है। षटकर्म हैं : नेति, धौति, बस्ति, कपालभाति, नौलि, त्राटक।

योगासन – ये शरीर के विशेष आसन हैं, जो शरीर के स्थिर खिंचाव के माध्यम से मस्तिष्क को शांत कर देते हैं। योगसन मनो–शारीरिक प्रकृति के होते हैं। ये शरीर की तंत्रिका–कोशीय और ग्रंथीय प्रणालियों को दुरुस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राचीन ग्रंथों में 84 से भी अधिक आसनों का उल्लेख है।

प्राणायाम – प्राणायाम एक ऐसा अभ्यास है, जिससे श्वसन नियंत्रण के माध्यम से उर्जा को विनियमित करने में मदद मिलती है।

मुद्रा – ये आसन और प्राणायाम के संयोजन से बनने वाली विशेष मुद्राएं/तकनीक हैं और इनका इस्तेमाल प्राण बल की वाहिका के रूप में किया जाता है।

ध्यान – ध्यान का अर्थ है किसी चीज पर ध्यान केंद्रित रखना। ध्यान योगभ्यास का एक अभिन्न अंग है और मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए लाभकारी है आर इससे स्वास्थ्य संवर्धन में भी सहायता मिलती है।

प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा स्वास्थ्य और उपचार विज्ञान है और एक सुस्थापित दर्शन के आधार पर औषधि रहित उपचार है। इसकी स्वास्थ्य और रोग की अपनी संकल्पना तथा उपचार के सिद्धांत हैं। प्राकृतिक विज्ञान उपचार की एक ऐसी पद्धति है, जिसमें

शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तरों पर प्रकृति के सकारात्मक सिद्धांतों के साथ सामंजस्य बनाकर रहने का समर्थन किया जाता है। इसमें स्वास्थ्य संवर्धन और स्वास्थ्य बहाली तथा रोग निरोधात्मक और उपचारात्मक क्षमता है।

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान हमें सिखाता है कि रोग प्रकृति द्वारा शरीर के स्वास्थ्य की बहाली के लिए शरीर से दूषित पदार्थ को समाप्त करने का प्रयास है। इसलिए, हमें बुखार, खांसी, अतिसार आदि जैसे रोगों के बाह्य लक्षणों को दबाना नहीं चाहिए, बल्कि शरीर से संक्रमित सामग्री को निकालने को प्रक्रिया में प्रकृति के साथ सहयोग करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग की एकता और उपचार की एकता की संकल्पना में विश्वास किया जाता है। इसके अनुसार, सभी रोगों का मूल कारण एक है, अर्थात शरीर में गंदी सामग्री का इकठ्ठा हो जाना और इसका उपचार भी एक है, अर्थात शरीर से ऐसी विषाक्त सामग्री को हटाना।

प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत बैक्टीरिया और वायरस को रोग का गौण कारण माना जाता है। रोग का मूल कारण शरीर के अंदर दूषित सामग्री का जमा हो जाना है। शरीर में दूषित सामग्री के इकठ्ठा हो जाने से रोगाणओं को फलने–फूलने का अनुकूल वातावरण मिल जाता है। अतः रोग का मूल कारण शरीर में दूषित सामग्री है और रोगाणु रोग का केवल गौण कारण है।

गंभीर रोग शरीर द्वारा स्व–उपचार के प्रयास हैं। इसलिए, इन्हें मित्र माना जाता है, शत्रु नहीं। चिरकालिक रोग गलत उपचार और गंभीर रोगों को दबाने का परिणाम है।

मानव शरीर में स्वतः ही उल्लेखनीय स्वास्थ्यकर शक्ति होती है। प्रकृति सबसे अच्छा उपचार है। मानव शरीर स्वतः ही उपचार की मशीन है। इसमें रोगों को रोकने और रुग्ण होने पर स्वस्थ हो जाने की अंतर्निहित शक्ति है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी उपचार के केंद्र में होता है और शरीर की शक्ति बढ़ने और उसकी विषाक्तता समाप्त हो जाने से रोग का स्वतः ही उपचार हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में समग्र उपचार पर बल दिया जाता है। इसमें प्रभावित विशिष्ट अंग के बजाय पूरे शरीर का उपचार किया जाता है। इसके अलावा, इसके अंतर्गत मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तरों पर भी उपाय किये जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में औषधियों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। इसके अनुसार, 'खाद्य ही औषधि हैं'।

प्राकृतिक चिकित्सा में प्रार्थना को उपचार का एक तरीका माना जाता है। गांधीजी के अनुसार 'राम नाम सर्वोत्तम प्राकृतिक उपचार है' अर्थात रोगी के विश्वास के अनुसार प्रार्थना करना उपचार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार, दुर्घटना अथवा शल्य–चिकित्सा को छोड़कर रोग का मूल कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है और प्रकृति के नियमों के उल्लंघन के प्रभाव निम्नलिखित हैं

1. शक्ति की कमी।
2. रक्त की असामान्य संरचना और
3. शरीर में दूषित सामग्री का संचय।

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान हमें सिखाता है कि रोग प्रकृति द्वारा शरीर के स्वास्थ्य की बहाली के लिए शरीर से दूषित पदार्थ को समाप्त करने का प्रयास है। इसलिए, हमें बुखार, खांसी, अतिसार आदि जैसे रोगों के बाह्य लक्षणों को दबाना नहीं चाहिए, बल्कि शरीर से संक्रमित सामग्री को निकालने की प्रक्रिया में प्रकृति के साथ सहयोग करना चाहिए।

एलोपैथी चिकित्सा पद्धति

स्वास्थ्य से जुड़ी कैसी भी समस्या हो, जब इलाज की बात आती है तो हम तुरंत एलोपैथी इलाज लेते हैं, ताकि इन दवाओं से तुरंत आराम मिल सके। चिकित्सा की इस पद्धति के अगर कुछ फायदे हैं तो कुछ नुकसान भी हैं।

एलोपैथी चिकित्सा से कुछ लाभ होना निर्विवाद है, जैसे यह मनुष्य को तुरंत राहत दिला देती है। मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कष्टों से शीघ्र से शीघ्र राहत मिल सके। एलोपैथी चिकित्सा उसमें सफल रही है। दूसरा निर्विवाद लाभ सफल शल्य चिकित्सा है। एलोपैथी ने शल्य चिकित्सा में वास्तव में आशातीत सफलता प्राप्त की है। पहले तो परंपरागत औजारों द्वारा शल्य चिकित्सा की जाती थी, परंतु विज्ञान के बढ़ते चरणों ने इन औजारों का स्थान विज्ञान की नई तकनीकों को दे दिया है। इसमें लेजर का प्रयोग उल्लेखनीय है। अणु तकनीक ने भी इस चिकित्सा पद्धति में बहुत सहायता की है। अब तो विज्ञान निरतर इस ओर प्रयत्नशील है कि जहां तक हो, शल्य चिकित्सा में चीर–फाड़ कम से कम करना पड़े।

एलोपैथी चिकित्सा विज्ञान के स्थापित सिद्धांतों पर आधारित है। इसमें नित्य नया प्रयोग होता रहता है, जो इस चिकित्सा पद्धति की ओर ही ले जा रहा है, परंतु इन सबके होते हुए भी इसको अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। इस पद्धति में इंजेक्शन एक ऐसी ही प्रक्रिया है जिसके परिणाम शीघ्र ही सामने आ जाते हैं और इसके द्वारा मनुष्य को तत्काल राहत मिलती है। इस प्रक्रिया से कई कठिन रोगों पर अंकुश लगाने में सहायता मिली है। वैज्ञानिक पद्धति पर चलते हुए इस चिकित्सा पद्धति में विभिन्न परीक्षणों का विशेष महत्व है। यदि परीक्षणों में रोग के लक्षण नहीं आते, तो डॉक्टर यह मानकर चलता है कि रोगी को कोई रोग नहीं हैं, परंतु वास्तविकता यह नहीं होती। परीक्षणों में कहीं–न–कहीं कुछ कमियां रह ही जाती हैं जिनके लिए वे और परीक्षण करना चाहते हैं। नए–नए यंत्र निकाले जा रहे हैं, नई–नई तकनीक विकसित की जा रही है जिससे कि परीक्षण पूर्ण हो सके, परंतु यह कितना सफल हुआ, यह तो भविष्य ही बता पाएगा।

सारांश :– इस प्रकार उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद की तुलना में अन्य चिकित्सा पद्धतियां रोग को मूल जड़ से समाप्त करने में उतनी प्रभावशाली नहीं है जितनी आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली। चरक एवं जीवक द्वारा दिये गये आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्तों में अनेक रोगों का उपचार एवं शरीर के प्रत्येक अंग का विवरण प्राप्त होता है जबकि अन्य चिकित्सा पद्धतियों में यह कम देखने को मिलता है।

सन्दर्भ

प्रसाद, राम, *विविध चिकित्सा प्रणालियां,* पृ. 32

राव, रामचंद्र, *आयुर्वेद और अन्य चिकित्सा प्रणालियां,* पृ. 121

कुरुप, दीप, *आयुर्वेद की सिद्धान्त,* पृ. 65

स्वामी, नारायण, *सिद्ध चिकित्सा : एक अध्ययन,* पृ. 25

दत्त, धर्म, *आधुनिक चिकित्सा,* पृ. 35

वही, पृ. 86

काश्यपसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय 23

वही, अध्याय 21

काश्यपसंहिता, कल्पस्थान, अध्याय 1

वही, अध्याय 3

वही, अध्याय 4

वही

काश्यपसंहिता, खिलस्थान, अध्याय 6

वही, अध्याय 16

वही, अध्याय 16, श्लोक 42

वही, अध्याय 12, श्लोक 45

वही, अध्याय 18

वही, अध्याय 17

काश्यपसंहिता, सूत्रस्थान 24

वही, अध्याय 28

स्वामी, नारायण, *सिद्ध चिकित्सा : एक अध्ययन,* पृ. 25

वही, पृ. 39

वही, पृ. 65

वही, प. 84

खलीफतुल्लाह, सैयद, *यूनानी चिकित्सा का इतिहास,* पृ. 15

वही, पृ. 31

कुरूप, दीप, *पूर्वोक्त,* पृ. 125

राय, हेमन्त, *होम्योपैथी चिकित्सा का इतिहास,* पृ. 12

ममगोई, शैलेन्द्र, *डॉ. हेनीमैन विरचित आर्गेनन की व्याख्या,* पृ. 21

वही, पृ. 39

शर्मा, हरि, *विविध चिकित्सा पद्धतियां,* पृ. 61

वही, पृ. 84

शास्त्री, रामप्रसाद, *योग का इतिहास,* पृ. 124

वही, पृ. 152

प्राकृतिक चिकित्सालय, बापू नगर, जयपुर में डॉ. रमन शर्मा से *प्राप्त जानकारी*

वही

दत्त, धर्म, *आधुनिक चिकित्सा,* पृ. 35

वही, पृ. 86

वही, पृ. 103